अग्नि पुराण में धर्म का स्वरूप

डॉ0 प्रतिभा*

''आग्नेय हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा विधाः प्रदर्शिताः'' अर्थात् इस अग्नि पुराण में सभी विद्याओं का वर्णन है। भगवान अग्निदेव अपने श्रीमुख से महर्षि वशिष्ठ को यह पुराण सुनाया है। अतः इसे अग्नि पुराण कहते हैं। पुराणों की अष्टादश सूचियों के मध्य अग्नि पुराण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में अग्नि पुराण भारतीय ज्ञानकोष है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से 'मन' प्रत्यय लगने पर व्युत्पन्न होता है। वैयाकरणों ने अनेक प्रकार से इस शब्द की व्याख्या की है। भारतीय वाङ्मय में अति प्राचीनकाल से धर्म शब्द प्रयुक्त होता आया है। वेदों में भी धर्म शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें कालान्तर से धर्म के सिद्धान्त का बीज निहित है। तैत्तिरीय आरण्यक में इसे समस्त विश्व की प्रतिष्ठा बतायी गयी है। लोक में लोग धर्मिष्ठ व्यक्ति के पास ही जाते हैं। धर्म के आचरण द्वारा अपने पापों को दूर करते हैं। धर्म में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। अतः धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। इसी अर्थ में धर्म के लिए कहा गया है–

''धारणाद धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः, यत् स्याद् धारण सयुक्तं स धर्म इति निश्चयः''

अर्थात् धारण करने के कारण ही यहाँ इसे धर्म कहा गया है। धर्म ही प्रजा को धारण करता है। जो धारण से संयुक्त हो उसे ही धर्म कहा गया है। प्राणी माष के धारण में समर्थ तत्व को धर्म की संज्ञा दी गई है।

भारतीय संस्कृति के सबसे महत्वपूर्ण उपादान के रूप में 'धर्म' का गौरव चिरकाल से रहा है, जिसके द्वारा भारतीय जनमानस और विचारधारा को अधिक व्यापक एवं अधिक सम्यक से समझा जा सकता है। प्राचीन काल में राष्ट्र का जो धर्म होता था, वही उसकी सबसे बड़ी विभूति मानी जाती थी। उसके स्वरूप में ही राष्ट्र की झाँकी देखी जाती थी। उसके गौरव में ही राष्ट्र का गौरव समझा जाता था। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में इसी धर्म की व्याख्या, इसी धर्म के स्वरूप का निरूपण और इसी के गौरव की गाथा गुंजायमान है।

अग्नि पुराण में महर्षि व्यास, धर्म के स्वरूप एवं विषय निर्धारण में वेद एवं स्मृतियों को प्रमाण मानते हैं। व्यास ने विशेष रूप से मनु के सिद्धान्त को प्रतिपादित

***संस्कृत विभाग कला संकाय, पटना विश्वविद्यालय, पटना–5**

किया है1। व्यास के मत से वेद में धर्म का जिस प्रकार प्रतिपादन किया गया है, स्मृति में भी उसी प्रकार है। वस्तुतः स्मृतियों में उक्त धर्म वेदोक्त धर्म का गुणार्थ, परिसंख्या, विशेषतः अनुवाद, विशेष, दृष्टार्थ अथवा फलार्थ हैं। मनु धर्म का सामान्य लक्षण इस प्रकार करते हैं–

विद्वदिभः सेवितः सदिभ् नित्यम् द्वेष् षरागिभिस्र।
हृद्येनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत3।।

तात्पर्य यह है कि द्वेष एवं राग रहित धार्मिक पंडितों ने जिसको सदा किया एवं हृदय से मुख्य जाना वही धर्म है। इसके अतिरिक्त मनु ने कहा है–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहु साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्4।।

आचार्य याज्ञवल्क्य के मत से पविष देश (जिस देश में कृष्ण मृग चरते हो) में उपयुक्त काल (उपयुक्त 'संक्रान्तयादि') में विधिपूर्वक जो श्रद्धा युक्त द्रव्य (स्वर्णादि) उचित पाष को दिया जाता है, वह समस्त धर्म का लक्षण है।

देशे काले उपायेन द्रव्यं श्रद्धा समन्वितम्।
पाषे प्रदीयते यतत् सकलं धर्मलक्षणम्5।।

अग्निपुराण6 में कथित व्यास के मत से वेदों एवं स्मृतियों में वर्णित धर्म पाँच प्रकार का हुआ करता है, जिसे क्रमशः प्रत्येक वर्ण के व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न होना चाहिए। मनु के मत से सम्पूर्ण वेद, वेदों को जानने वालों की स्मृति और उनका शील धार्मिकों का आचार और (जिस विषय को स्मृति में विकल्प से लिखा है) उसमें अपने मन की प्रसन्नता– यह धर्म के मूल है–

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम।
आचारश्चैव साधुनामात्मनस्तुस्तिरेव च7।।

याज्ञवल्क्य ने भी ऐसा ही कहा है–

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्8।।

मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि वेद एवं स्मृति ये दोनों विषय तर्क रहित है क्योंकि यही धर्म की उत्पत्ति स्थल हैं। जो द्विज उन दोनों धर्म के मूल्यों का तर्कशास्ष से अपमान करते हैं। ऐसे नास्तिक एवं वेदनिन्दकों को समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिए। मनु10 के मत से ब्राह्मण सम्पूर्ण जगत के धर्म का स्वामी होता है। ब्राह्मण की उत्पत्ति ही धर्म का अविनाशी शरीर है। वह धर्म के लिए उत्पन्न हुआ है और आत्मज्ञान से मोक्ष पाता है। यह ब्राह्मण सब प्राणियों के धर्म समूह की रक्षा के लिए समर्थ होता है। याज्ञवल्क्य11 धर्म को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि चारों वेद तथा धर्मशास्ष के ज्ञाता चार पुरुषों या तीनों विध

ाओं के ज्ञाता तीन पुरुषों की जो परिषद होती है वह जिस बात को कहे वह ध र्म है। अथवा अध्यात्म विद्या में निपुणतम एक व्यक्ति भी जो कहे वह धर्म है।। व्यास बौद्धिक कर्म के दो प्रकार कहते हैं– प्रवृत्त कर्म एवं निवृत्त। प्रवृत्त कर्म को 'काम्य' भी कहते हैं तथा निवृत्त वह है जिसे ज्ञानपूर्वक किया जाता है12। आचार्य याज्ञवल्क्य13 भी योग द्वारा आत्म साक्षात्कार को कर्मों में श्रेष्ठ माना है। व्यास के मत से–

सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति14।।

तथा आत्मज्ञान की इच्छा शान्त हो जाने पर वेदाभ्यास में यत्न करना चाहिए। आत्मतत्व ज्ञानी पुरुष आश्रम में रहते हुए भी मानो ब्रह्म के समान हो जाता है। व्यास ने धर्म के दस लक्षण बतायें हैं–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय्नग्रहः।
धीविद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्15।।

1. धृतिः– 'धृति का अर्थ है धन आदि के नाश हो जाने की अवस्था में भी धैर्य का बना रहना तथा प्रारम्भ किये गये कार्यों में बाधा उपस्थित होने पर भी उद्विग्न न होना।
2. क्षमा– 'क्षमा' दूसरों के अपराध को सह लेने को कहते है।।
3. दम– 'दम' का अर्थ है मन को निर्विकार रखना।
4. अस्तेय– 'अस्तेय' का अर्थ है दूसरों की वस्तु या धन उसकी अनुमति के बिना ना लेना।
5. शौच– 'शौच' शरीर की शुद्धि और आहार की पविषता को कहते है।
6. इन्द्रिय निग्रह– 'इन्द्रियनिग्रह' से तात्पर्य है विषयों से मन सहित इन्द्रियों को विरक्त रखना।
7. धी– 'धी' कहते हैं मोक्ष विषयक बुद्धि को।
8. विद्या– 'विद्या' है आत्मा और आत्मवस्तु के विवेक का ज्ञान।
9. सत्य– 'सत्य' का अर्थ है यथार्थवादी अथवा यथार्थ दृष्टार्थवादी होना।
10. अक्रोध– 'अक्रोध' का अर्थ है क्रोध की निवृत्ति।

मनु16 ने भी अपने धर्म के यही दस लक्षण निरूपित किये हैं। अग्निपुराण के अनुसार वेदों एवं स्मृतियों में कथित धर्म अथवा धर्म के विषय पाँच प्रकार का हुआ करता है जिसे क्रमशः प्रत्येक वर्ण के व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न होना चाहिए।

वेदास्मार्तं प्रवक्ष्यामि धर्म वै पंचधा स्मृतम्।
वर्णत्वमेक्माश्रित्य योऽधिकारः प्रवर्तते17।।

परन्तु पाँच प्रकार कौन से हैं, इसका स्पष्ट संकेत अग्नि पुराण में व्यास ने नहीं किया है। जबकि आचार्य याज्ञवल्क्य18 धर्म के लक्षण निर्धारण क्रम में ही इसके विषय को कहते हैं।

''अष धर्म शब्द्षडविधस्मार्त धर्म विषयः। तद्यथा– वर्णधर्मः, आश्रम धर्मः, गुण धर्मः, निमित्त् धर्मः, साधारण धर्म धर्मश्चेति।''

मनु ने कहा है कि मनुष्यों का धर्म युगों के अनुसार बदलते रहते हैं–

तपः परम् कृतयुगे षेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे19।।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में इतना तो कहा ही जा सकता है कि धर्म की अनन्त गहराई एवं शाश्वत ऊँचाई को परिभाषा की लकीरों में सीमित करना असंभव है किन्तु फिर भी मानवीय धर्म चेतना तक उनके संदेश को पहुँचाने के लिए बौद्धिक शब्दों का सहारा तो लेना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार पुराणों के धार्मिक दृष्टिकोण सम्पूर्ण साहित्य जगत में अक्षुण्ण स्थान रखता है। इसमें प्राचीन धार्मिक प्रवृत्तियों, विश्वासों, श्रद्धा एवं आस्थाओं का वर्णन सरलता से किया गया है, जिसे यह धार्मिक प्रवृत्तियाँ जनसामान्य तक सुगमता पूर्वक पहुँच सकी है।

संदर्भः–

1. अग्निपुराण– 166/8/472
2. वही श्लोक 9
3. मनुस्मृति 2/1/16
4. वही 2/12/17
5. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/6/3
6. अग्निपुराण 166/1/472
7. मनुस्मृति 2/6/17
8. याज्ञवल्क्यस्मृति 2/6/17
9. मनुस्मृति 2/10, 11/17
10. मनुस्मृति 1/94, 98, 99/13
11. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/7/4
12. अग्निपुराण 162/4, 5/463
13. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/8/4
14. अग्निपुराण 162/6, 7/463
15. अग्निपुराण 161/17/461
16. मनुस्मृति 6/92/151
17. अग्निपुराण 166/1/472
18. याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय 1 श्लोक 1 मिताक्षरा व्याख्या
19. मनुस्मृति 1/86/12